छद्म विकास एवं पर्यावरण–विनाषपरक अर्थ–नीति का षिकार है बुन्देलखण्ड

डॉ. भारतेन्दु प्रकाष
बुन्देलखण्ड संसाधन अध्ययन केन्द्र, छतरपुर म.प्र.

ग्लोबल वार्मिंग को पीछे छुपाकर स्थानीय पर्यावरण को प्रतिक्षण नष्ट करने वाली अर्थनीति तथा प्रकृति को अस्थायी छद्म विकास के नाम पर अस्तव्यस्त कर देने वाली अंधी दौड़, भारतीय परम्परा के विरुद्ध विकसित की हुई समझ तथा संस्कृति को बढ़ावा देने वाली सरकारी विकासनीति ने बुन्देलखण्ड तथा ऐसे ही अन्य प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण भारत के अनेक क्षेत्रों को बरबादी के इस मुकाम तक पॅहुचाने मे बड़ी भूमिका अदा की है जिसके तहत **श्री प्रषान्त दुबे (विकास संवाद**) यह लिखने को प्रेरित हुये कि बुन्देलखण्ड मे कुछ नही बचा। देखा जाय तो अभी स्थिति इतनी बिगड़ी नही है पर विकास के नाम पर जो किया जा रहा है वह बड़े वेग से उस दिषा की ओर ले जा रहा है जहॉ कुछ ही दषकों मे मानव ही नही प्राणिमात्र का जीवन घोर संकट मे पड़ जायेगा और वह सर्वनाष महाभारत से भी अधिक भयंकर होगा।

हर क्षण सरकारी संरक्षण मे कटते हुये जंगल, हर वर्ष बड़ी बड़ी बोलियों के तहत नीलाम होने वाले और ध्वस्त होते पहाड़ , अनियंत्रित तथा असीमित ग्रेनाइट, इमारती पत्थर, बालू तथा हीरा निकालकर केवल कुछ वर्षों के लिये राजस्व और रायल्टी के रूप मे दिखाई जाने वाली ऐसी आमदनी जिसके आधार पर राज्यों तथा राष्ट्र का डेफिसिट बजट, देष या किसी भी प्रदेष को विकास के किस रास्ते पर ले जा रहा है यह सरकारों या समाज के लिये घोर चिन्ता का विषय होना चाहिये था पर यहॉ हमारे देष मे इसे विकसित होने का प्रमाणपत्र माना जा रहा है। सामान्य जन के मन मे इसे भारत निर्माण तथा आर्थिक विकास की नीतियों की सफलता के मानदण्ड के रूप मे प्रतिष्ठित किया जा रहा है। यह क्षोभ ही नही अपितु गहरे चिन्तन का विषय है।

बुन्देलखण्ड की विषेष स्थिति

सर्वाधिक घने जंगल, चारो ओर फैले हुये लघु से लेकर विषाल पर्वतों की अन्तहीन श्रंखला, चम्बल से तमसा तक निर्मल जल प्रवाही सिंध ,पहूज, बेतवा, धसान, केन , बागैं , एवं पयस्वनी और उन सबको अपने मे समेटने वाली यमुना जैसी पूज्य एवं पवित्र नदियॉ और उनके चारो ओर बसे सेंहुड़ा, ओरछा, गढ़कुण्डार, दतिया, झॉसी , जटाषंकर , भीमकुण्ड, खजुराहो, सागर, पन्ना , देवगढ़, अजयगढ़, महोबा, कालिंजर तथा चित्रकूट जैसे ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल इस क्षेत्र को भारत के हृदय की गरिमा प्रदान करते हैं। रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों के प्रणयन मे इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चन्देल (9वीं से 13वीं षताब्दि) एवं बुन्देले (16वीं से 18वीं षताब्दि) राजाओं ने इस पूरे क्षेत्र के भूगोल एवं पारिस्थितिकी का सदुपयोग करते हुये यहॉ जल प्रबंधन का जो महत्वपूर्ण कार्य किया था वैसा प्रबंधन सारे संसार मे अद्वितीय है। कलाक्षेत्र मे खजुराहो जैसी विष्व प्रसिद्ध निर्मिति का श्रेय भी यहॉ के चन्देलवंषी राजाओं को ही है। पौराणिक महत्व का पुरातन कालिंजर है, जिसे जीतने की लालसा हर राजवंष, आक्रामक अथवा बादषाह

को होती रही है। झॉसी की रानी और महाराज छत्रसााल की वीरगाथायें जन–जन के मष्तिष्क मे आज भी जीवित हैं।

ऐसे महत्वपूर्ण संस्कृति एवं संपदा से सम्पन्न क्षेत्र को विदेषी अंग्रेजी सत्ता ने रौदा ही नही अपितु ऐसी व्यवस्था कायम की कि स्वतंत्रता के बाद आज भी हमारी सरकारों मे जंगल, पहाड़, तालाब तथा नदियों के प्रबंधन मे कितना अधिक धन कमाया जा सकता है यह मानसिकता हावी है और उसी का परिणाम है कि अच्छी उपजाऊ मिट्टी , कालजयी बीजों तथा परिश्रमी किसानों और श्रमिकों के बावजूद यह क्षेत्र विपन्न है, किसान आत्महत्या के लिये मजबूर हैं तथा श्रमिक सपरिवार पलायन के लिये। यहॉ की प्राकृतिक संपदा ही इस क्षेत्र की दुष्मन बन गई है जहॉ देषी – विदेषी कम्पनियॉ , उद्योगपति तथा सेठ–साहूकार उद्योग तका विकास के नाम पर इसे सर्वनाष की ओर ढकेल रहे हैं।

ग्लोबल वार्मिंग तथा जलवायु परिवर्तन का अन्तर्राष्ट्रीय भूत प्रकृति के स्थानीय असंतुलन के कुकृत्य को ढॉप रहा हैः

जब से अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज़ पर **जलवायु–परिवर्तन** तथा **ग्लोबल वार्मिंग** का भूत सवार हुआ है सारे लोगों, जो पर्यावरण को अपने हित मे नष्ट कर रहे हैं, को इस के पीछे अपने कुकृत्यों को छिपाने तथा स्थानीय कारणों तथा स्थानीय समाधनों से सामान्य जनता का ध्यान बॅटाने का अच्छा अस्त्र मिल गया है। एक सीमा तक वे अपने इस अभियान मे कामयाब भी हो रहे हैं। सरकारें भी राजस्व लोभ मे त्वरित विकास की इस विनाषक प्रक्रिया मे उनकी मददगार बन रही हैं।

आज सम्पूर्ण विंध्य से आवृत्त क्षेत्र जो प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर रहा है , विनाषकारी ध्वंस का षिकार हो रहा है । जंगलों का सफाया तो अंग्रेजों के जमाने से प्रारम्भ होकर आज तक बदस्तूर जारी है। अंग्रेजों के लिये जंगल तो लकड़ी के भण्डार मात्र थे। उन्हे यहॉ की संस्कृति मे जंगल की मान्यता तथा महत्व का कोई ज्ञान नही था। इसके बावजूद 1947 तक ढाल के जंगल बचे हुये थे पर आज तो कोई भी पहाड़ ऐसा नही है जो पूरी तरह खल्वाट न हो गया हो। इस प्रक्रिया मे पहाड़ों पर बने मन्दिरों की उपस्थिति पहले जंगल बचाने मे कारगर थी पर अब सबको यह समझ आ गई है कि मन्दिर के अन्दर का भगवान उनका कुछ भी नही विगाड़ सकता। मंदिरों मे प्रसाद तथा चढ़ौना चढ़ाकर तथा सॉई बाबा जैसे महापुरुषों की मूर्ति पर सोना अर्पित कर वे अपने को पापमुक्त समझ लेते हैं। आज सभी तरह के खनिजों के उत्खनन के माध्यम से स्थानीय, बाहरी तथा विदेषी अनेक समूह तथा कम्पनियॉ इस क्षेत्र को समग्र रूप से बरबाद करने की होड़ मे संलग्न हैं। उत्खनन के समय पहाड़ को कितना गहरा खोदना या तोड़ना है इसकी सीमा सरकार ने तो बॉधी ही नही, विध्वंसकों को भी यह भान नही कि वे भविष्य के लिये क्या बो रहे हैं। ऐसा लगता है कि यह धनलोलुपता यहॉ के सारे संसाधन आगामी 25–30 वर्षों मे खत्म कर उनका घर तो भर देगी पर यहॉ के निवासियों को मजबूरी मे अन्यत्र (?) पलायन के लिये अथवा मरने के लिये मजबूर कर देगी। आने वाले वर्षों मे क्षेत्र का क्या स्वरूप होगा यह अकल्पनीय है। सरकार भी इस पूरे कार्य मे विध्वंसकों के साथ है यह एक और भी बड़ी समस्या है।

यह तथ्य है कि जंगल, पहाड़, नदियॉ आदि जो प्रकृति की स्वस्थ व्यवस्थायें हैं एक बार नष्ट होने के बाद अपने प्राकृतिक स्वरूप को पुनः वापस नही पा सकतीं , ये कभी भी अपनी मूलस्थिति मे आ नही सकतीं । ये

बनाई तो जा नही सकतीं , समझदारी इसी मे है कि इन्हे नष्ट होने से अविलम्ब रोका जाय। आज यदि यह कार्य प्रारम्भ हो तो तो इन्हे बचाया जा सकता है पर उसके लिये अपने स्वार्थी मन को संयमित करना होगा, तुरन्त लाभ पाने की आदत छोड़नी होगी और अगली पीढ़ियों का भी ध्यान रखना होगा।

जो प्रकिया चल रही है उसके चलते भूमि का क्षरण, वर्षा का अभाव तथा अनियमन, जमीन का ऊसर होते जाना फलतः कृषि उत्पादन मे गम्भीर कमी , नदियों का पूरी तरह सूखना, प्राणवायु की कमी, तापक्रम मे अनियंत्रित वृद्धि तथा अनेक नयी बीमारियों का फैलाव ,ये सब आने वाले समय की वस्तुस्थिति का अनुमान है। आज का तथाकथित षिक्षित समाज किसी भी प्रकार की दूरदृष्टि का परिचय नही दे रहा , इससे तो अच्छे हमारे वे पूर्वज थे जो निरक्षर भले ही रहे हों पर अज्ञानी और संवेदनाषून्य नही थे।

क्या होना चाहिये इसे सोचना, समझना और करना बेहद जरूरी है :

यह भूलना भयंकर होगा कि मनुष्य तथा सारा जीव जगत प्रकृति की ही उपज है , इन सबको प्राकृतिक संसाधन ही जीवित रख सकते हैं। प्रकाष, हवा, पानी, भोजन ये सब प्रकृति से ही हमे प्राप्त होते हैं और इनके बिना जीवनषीलता सम्भव नही, फिर भी इनकी उपेक्षा का भाव तथा अपने केवल अर्थलाभ के लिये इन्हे नष्ट करना कहॉ तक उचित तथा नीति एवं विधिसंगत है, यह विचारणीय है। मनुष्यता ही नही सृष्टि को यदि बचना है तो आज यह पहले से भी अधिक आवष्यक हो गया है कि प्रकृति एवं पर्यावरण को संतुलित बनाने का कार्य प्राथमिक कर्तव्य के रूप मे स्वीकार किया जाय। यह तो तथ्य है कि यह कार्य विष्व – एवं प्रत्येक देष के स्तर पर करना आवष्यक है पर इसके लिये क्षेत्र विषेष के कार्य मे देरी अथवा उसकी उपेक्षा किसी भी रूप मे उचित नही। यह तो सभी के सरवाइवल का सवाल है।

देष के स्तर पर भारत और क्षेत्र–स्तर मे संपूर्ण विंध्य–बुन्देलखण्ड क्षेत्र के संदर्भ मे महत्वपूर्ण कदम जिनकी आज सख्त जरूरत है ::

1. **पर्यावरण संरक्षण की चेतना का परिवार, समाज , विद्यालय, बाजार, कार्यालय तथा उद्योग सभी स्तर पर पूरी गम्भीरता से प्रसार किया जाना ।**
2. **भूमि , हवा, पानी, वनस्पति , जंगल, पहाड तथा नदियॉ इन सब के महत्व तथा उनके प्रति अपने कर्तव्य के विषय मे जनजागरण। यह समझना आवष्यक है कि प्रकृति का संरक्षण ही उन्हे बचा सकता है , एक बार नष्ट हुई प्रकृति पुनः संयोजित नही की जा सकती।**
3. **जंगल के सहउत्पादों को ही वहॉ का आर्थिक योगदान मानना चाहिये , जंगल को ही काट और समाप्त कर धन अर्जन की कल्पना भयावह है ,इसे अविलम्ब बंद करना होगा।**
4. **जीवन के लिये खनिज आवष्यक है पर देष का सारा खनिज केवल कुछ पीढ़ियों मे समाप्त कर देने अथवा पहाड़ों को समूल ही नही उसके नीचे सैकड़ों मीटर गहरे गडढे बनाकर भविष्य के लिये असुरक्षित, अनुत्पादक एवं अनुपयोगी गह्वर छोड़ देना किसी भी प्रकार से उचित तथा तर्कसम्मत नही है। खनिज निकालने की सीमा बॉधना, क्षेत्र सीमित करना तथा दीर्घावधि की योजना के तहत उनका अत्यावष्यक उपयोग सुनिष्चित तथा संयमित करना जरूरी है।**

5. भारत ग्राम–मूलक , प्रकृति का सम्मान करने वाला तथा संरक्षणात्मक संस्कृति वाला देष है अतः यहॉ गॉवों की उपेक्षा करके नगरों का अनियंत्रित विस्तार आत्महत्यात्मक कदम सिद्ध होगा । अच्छा हो हम अपनी स्वगत षक्ति के बल पर ही सर्वांगीण विकास का स्वप्न देंखें और वैसा ही नियोजन करें।
6. भारत कृषिप्रधान देष है, यहॉ कृषि के अन्तर्गत तथा जो भी अनुपयोगी भूभाग चारो ओर विखरा हुआ है उसे व्यवस्थित कर पूरी तरह जैविक उत्पादन के तहत मोड़कर हम सभी तरह की खाद्यवस्तुओं का इतना उत्पादन प्राप्त कर सकते है कि अपने अतिरिक्त बाहर के देषों को भी खिला सकें और अपने ऊपर लगे राष्ट्र नही अपितु केवल बड़े उपभोक्ता बाजार का लेबल मिटा सके।
7. जीवन के सभी क्षेत्रों मे हजारों वर्षों से विकसित , पुष्पित एवं पल्लवित पारम्परिक ज्ञान , विज्ञान , कला–कौषल एवं अध्यात्म को समुचित सम्मान तथा महत्व देकर भविष्य मे उन्हे षोध , चिन्तन का आधार बना कर उनका परिमार्जन करना देष को वास्तविक स्वतंत्रता, षाष्वत समृद्धि तथा विष्वस्तर पर सम्मानित होने की दिषा मे ले जा सकता है , यह समझना बेहद जरूरी है और तदनुरूप प्रयासरत तथा प्रतिष्ठित होना भी।

.....

Dr. Bharatendu Prakash M.Sc., D.Phil.
Vikram Sarabhai Fellow (MPCST-2008-2012)
Bundelkhand Resources' Study Centre, Chhatarpur 471001, M.P.
09425814405 : <brsc2008@gmail.com>